Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

राम मंदिर आंदोलन का ऐतिहासिक विकास (1858-2024): आधुनिक भारतीय इतिहास में धर्म, राजनीति और न्यायिक प्रक्रिया का समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ. प्रदीप कुमार
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग
पं. नेकी राम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक, हरियाणा, भारत

Article Received:10-11-2024 Article Modified:28-12-2024
Article Accepted:29-12-2024 Article Published: 28-12-2024
DOI:10.37854/UIJMR.2024.1.3.75

सार

राम मंदिर आंदोलन आधुनिक भारतीय इतिहास का सबसे दीर्घकालिक, बहुस्तरीय और सार्वजनिक जीवन को रूपांतरित करने वाला विवाद/आंदोलन रहा है।इसकी जड़ें उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औपनिवेशिक प्रशासन, स्थानीय धार्मिक संस्थाओं, और समुदायों के बीच विकसित होते 'पवित्र स्थल' के स्वामित्व/उपयोग विवादों से जुड़ती हैं।स्वतंत्रता के बाद यह प्रश्न राष्ट्र-निर्माण, धर्मनिरपेक्ष राज्य की परिकल्पना, और संवैधानिक न्याय की सीमाओं के साथ लगातार पुनर्परिभाषित होता रहा।1949 में परिसर में मूर्तियों की स्थापना के बाद राज्य द्वारा "यथास्थिति" नीति (ताले/प्रशासनिक नियंत्रण) अपनाई गई, जिसने संघर्ष को स्थगित किया, पर समाधान नहीं दिया।1980 के दशक में यह विवाद व्यापक जन-आंदोलन के रूप में उभरा, जहाँ संगठनों और राजनीतिक दलों ने इसे "ऐतिहासिक न्याय" और "सांस्कृतिक पुनर्स्थापन" की भाषा में जनमानस के सामने रखा; वहीं आलोचकों ने इसे पहचान-राजनीति के तीव्र ध्रुवीकरण और अल्पसंख्यक सुरक्षा के संकट के रूप में देखा।1992 की घटना ने भारतीय लोकतंत्र की संस्थागत क्षमता—विशेषतः प्रशासन, पुलिस-व्यवस्था, और राजनैतिक नेतृत्व—पर कठोर प्रश्न खड़े किए और सांप्रदायिक हिंसा के दीर्घकालिक प्रभावों को गहराया।

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

इस शोध-पत्र में 1858–2024 की अवधि को तीन बड़े चरणों में समझा गया है: (1) औपनिवेशिक 'प्रबंधन' और विवाद का कानूनीकरण (1885 मुकदमे सहित), (2) स्वतंत्र भारत में राज्य-नीति, पार्टी-राजनीति और सामाजिक ध्रुवीकरण (विशेषतः 1980–1992), तथा (3) न्यायिक प्रक्रिया का दीर्घ विकास, जिसमें 2010 के उच्च न्यायालय निर्णय से लेकर 2019 के सर्वोच्च न्यायालय के सर्वसम्मत निर्णय तक की यात्रा शामिल है ।2024 में मंदिर प्राण-प्रतिष्ठा ने इस पूरे इतिहास को एक नए प्रतीकात्मक चरण में पहुंचाया, जहाँ धार्मिक आस्था के साथ राज्य-समर्थित सार्वजनिक आयोजन, नागरिकता-धारणाओं और राष्ट्रवादी राजनीतिक आख्यानों के संबंधों पर नई बहसें तेज हुईं ।अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि राम मंदिर आंदोलन को केवल धार्मिक विवाद मानना पर्याप्त नहीं; यह आधुनिक भारत में इतिहास-निर्माण, स्मृति-राजनीति, चुनावी लोकतंत्र, और न्यायिक वैधता के अंतर्संबंधों को समझने का एक केंद्रीय केस-स्टडी है।

मुख्य शब्द: राम मंदिर, अयोध्या विवाद, हिंदू राष्ट्रवाद, धर्म और राजनीति, न्यायिक प्रक्रिया, आधुनिक भारत

1. भूमिका

राम मंदिर आंदोलन/अयोध्या विवाद आधुनिक भारत में "धर्म—राजनीति—कानून—इतिहास" के जटिल अंतर्संबंधों का सबसे चर्चित उदाहरण है ।अयोध्या स्थल को लेकर दो समानांतर दावे—एक ओर राम जन्मभूमि की आस्था-आधारित परंपरा, दूसरी ओर ऐतिहासिक मस्जिद के अस्तित्व और मुस्लिम धार्मिक अधिकार—लंबे समय से भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र में टकराते रहे हैं। परंतु इसे मात्र धार्मिक टकराव के रूप में देखना ऐतिहासिक दृष्टि से अधूरा है ।यह विवाद औपनिवेशिक प्रशासन की "शांति-प्रबंधन" नीतियों, स्वतंत्र भारत की धर्मनिरपेक्ष राज्य-रचना, और जनतांत्रिक राजनीति के प्रतिस्पर्धी विमर्शों के बीच विकसित हुआ (फ्राइटैग, 1989; हैनसेन, 1999)।

इस शोध के तीन प्रमुख प्रश्न हैं:

(क) औपनिवेशिक काल में इस विवाद का कानूनी रूप कैसे बना और क्यों यथास्थिति-आधारित समाधान टिकाऊ नहीं हुआ?

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

(ख) 1980–1992 के दौरान यह मुद्दा जन-आंदोलन और चुनावी राजनीति के केंद्र में कैसे आया, और इससे सामाजिक ध्रुवीकरण व हिंसा के कौन-से ढांचागत कारण उभरे?

(ग) न्यायपालिका द्वारा 2019 में दिए गए निर्णय ने "आस्था, साक्ष्य और संवैधानिक नैतिकता" के बीच संतुलन कैसे साधा, और इसके बाद राज्य-समाज संबंधों में कौन-से नए प्रश्न खड़े हुए?

इतिहास-लेखन में राम मंदिर आंदोलन पर दो प्रवृत्तियाँ दिखती हैं।पहली प्रवृत्ति इसे "सांस्कृतिक पुनरुत्थान" और "ऐतिहासिक सुधार" की परियोजना मानती है; दूसरी इसे लोकतांत्रिक संस्थाओं पर दबाव, अल्पसंख्यक अधिकारों की असुरक्षा और भीड़-राजनीति की समस्या के रूप में देखती है (जाफ़रलोट, 1996; नंदी, 1995)।दोनों दृष्टियाँ कुछ तथ्य पकड़ती हैं, पर दोनों में "राज्य की भूमिका", "कानून का राजनीतिककरण", और "इतिहास/पुरातत्व के सार्वजनिक उपयोग" जैसे आयामों पर समग्रता से चर्चा अक्सर छूट जाती है।उदाहरण के लिए, धार्मिक स्थलों पर अधिकार-विवादों में अदालतें केवल विधिक संस्थाएँ नहीं रहीं; वे स्मृति और पहचान की प्रतिस्पर्धी कहानियों को वैध/अवैध करने वाले मंच भी बनती हैं (लार्सन, 1995; एस.सी. ऑब्ज़र्वर, 2019)।

अतः यह अध्ययन राम मंदिर आंदोलन को आधुनिक भारतीय इतिहास की एक दीर्घ प्रक्रिया के रूप में रखता है—जिसमें औपनिवेशिक शासन, स्वतंत्र भारत की राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, और न्यायिक संस्थागतरण की परतें एक-दूसरे पर चढ़ती हैं।इस दृष्टि से 'अयोध्या' केवल एक स्थल नहीं, बल्कि आधुनिक भारत की सार्वजनिक संस्कृति के पुनर्गठन की कहानी भी है (थापर, 2019; जाफ़रलोट, 2019)।

2. स्रोत, पद्धति और सैद्धांतिक ढांचा

यह शोध ऐतिहासिक-समालोचनात्मक पद्धति अपनाता है और तीन प्रकार के स्रोतों पर आधारित है।प्रथम, न्यायिक/आधिकारिक दस्तावेज—जैसे 2019 का सर्वोच्च न्यायालय निर्णय, उसके प्रक्रिया-सार, तथा विवाद की कानूनी समयरेखा (सर्वोच्च न्यायालय, भारत, 2019; एस.सी. ऑब्ज़र्वर, 2019)।इसी

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

श्रेणी में 1992 के बाद गठित आयोगों/सरकारी रिकॉर्ड का संदर्भ भी उपयोगी है, क्योंकि ये राज्य की संस्थागत प्रतिक्रिया और उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालते हैं (गृह मंत्रालय, भारत सरकार, 2022)।द्वितीय, अकादमिक पुस्तकों और शोध-ग्रंथों का उपयोग किया गया है, जो हिंदू राष्ट्रवाद, सांप्रदायिक राजनीति, और राज्य-सत्ता की संरचना की व्याख्या करते हैं (हैनसेन, 1999; जाफ़रलोट, 1996; ब्रास, 2003; ज़ावोस, 2000)।तृतीय, चुनिंदा जर्नल/शोध-पत्र और आयोग-आधारित अध्ययन, जो सांप्रदायिक दंगों, सार्वजनिक विमर्श और राज्य विफलताओं की रूपरेखा प्रदान करते हैं (कौसर, 2006; एज एवं राजन, 2018)।

सैद्धांतिक रूप से अध्ययन "इतिहास और स्मृति" तथा "पहचान-राजनीति" के विमर्शों से संवाद करता है।एक ओर, यह देखता है कि किस प्रकार अतीत की व्याख्या वर्तमान राजनीतिक लक्ष्यों के अनुरूप पुनर्निर्मित होती है—जिसे 'इतिहास का वर्तमान में उपयोग' कहा जा सकता है (थापर, 2019)।दूसरी ओर, यह हिंदू राष्ट्रवाद के उदय को केवल विचारधारा नहीं, बल्कि संगठनात्मक क्षमता, जन-आंदोलन तकनीकों और चुनावी प्रतिस्पर्धा के तंत्र के रूप में भी पढ़ता है (जाफ़रलोट, 1996; ज़ावोस, 2000; हैनसेन, 1999)।

पद्धति के स्तर पर, अध्ययन घटनाक्रम को चरणों में विभाजित करता है—औपनिवेशिक काल (1858–1947), स्वतंत्र भारत का प्रारंभिक चरण (1947–1980), उभार/उग्र चरण (1980–1992), और न्यायिक-राजनीतिक समेकन (1992–2019), तथा इसके बाद का प्रतीकात्मक-राजनीतिक चरण (2019–2024)।प्रत्येक चरण में तीन आयामों पर ध्यान है:

(क) राज्य/प्रशासन की रणनीति,

(ख) संगठनों/दलों की भूमिका और जन-राजनीति,

(ग) कानूनी वैधता और सार्वजनिक विमर्श।

इस ढांचे की उपयोगिता यह है कि यह आंदोलन को "एक घटना" नहीं, बल्कि "लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया" के रूप में पकड़ता है और यह समझने में मदद करता है कि क्यों समाधान की भाषा बार-बार बदलती रही—कभी प्रशासनिक नियंत्रण,

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

कभी सड़क-आंदोलन, और अंततः न्यायिक निर्णय (सर्वोच्च न्यायालय, भारत, 2019)।

3. औपनिवेशिक काल: विवाद की उत्पत्ति, कानूनीकरण और 'यथास्थिति' (1858–1947)

अयोध्या विवाद का आधुनिक रूप औपनिवेशिक काल में स्पष्ट होता है, जब ब्रिटिश प्रशासन ने धार्मिक स्थलों और समुदाय-आधारित दावों को कानून-व्यवस्था के प्रश्न के रूप में देखना शुरू किया।1857 के बाद शासन-तंत्र का लक्ष्य 'शांति' था, और धार्मिक विवादों के समाधान के बजाय उनका 'प्रबंधन' प्राथमिकता बन गया।यही वह संदर्भ है जिसमें अयोध्या स्थल को लेकर स्थानीय प्रतिस्पर्धाएँ प्रशासनिक रिकॉर्ड और न्यायिक कार्रवाइयों में दिखाई देती हैं।1885 का मुकदमा (महंत रघुबर दास द्वारा) औपनिवेशिक कानूनीकरण का महत्वपूर्ण पड़ाव था, जहाँ अदालत ने संभावित सांप्रदायिक तनाव का हवाला देते हुए निर्माण/दावे को सीमित किया।इस प्रकार, औपनिवेशिक राज्य ने समस्या को सुलझाने की बजाय 'यथास्थिति' को संस्थागत रूप दिया—जिसके दीर्घकालिक परिणाम स्वतंत्र भारत ने भी भोगे। औपनिवेशिक युग में 'इतिहास' और 'पुरातत्व' भी राजनीतिक संसाधन बनने लगे।

ब्रिटिश काल के ज्ञान-उत्पादन ने धार्मिक स्थलों को ऐतिहासिक कथाओं के साथ जोड़ने में भूमिका निभाई; इससे स्थल-आधारित पहचानें और अधिक कठोर होती गईं।यही कारण है कि बाद के चरणों में पुरातात्विक निष्कर्ष, ग्रंथ-परंपरा और लोक-स्मृति—तीनों—राजनीतिक भाषण का हिस्सा बनते गए। आधुनिक इतिहास-लेखन ने बार-बार चेताया है कि "अतीत" को वर्तमान पहचान के लिए इस्तेमाल करने की प्रक्रिया चयनात्मक होती है; अतः औपनिवेशिक काल की कानूनी-प्रशासनिक संरचना के साथ-साथ "स्मृति-निर्माण" की राजनीति भी समझनी होगी (थापर, 2019; फ्राइटैग, 1989)।

इस अवधि का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है धार्मिक समुदायों के भीतर संस्थागत संरचनाओं का विकास।अखाड़ों, मंदिर-प्रबंधों और स्थानीय धार्मिक नेतृत्व की

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

भूमिका बढ़ी, जिसने दावे को सामाजिक आधार दिया।यद्यपि यह विवाद राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में तब नहीं था, पर औपनिवेशिक कानूनी मंचों ने उसे भविष्य के लिए तैयार कर दिया।'कानून के माध्यम से दावा' और 'शांति के नाम पर टालना'—दोनों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि स्थल का प्रश्न धीरे-धीरे "अधिकार" और "पहचान" की धुरी पर टिकता गया।

औपनिवेशिक व्यवस्था की यह विरासत स्वतंत्रता के बाद भी जारी रही: राज्य ने एक लम्बे समय तक 'टकराव-प्रबंधन' को 'समाधान' का विकल्प मान लिया। इसलिए 1947 के बाद का इतिहास समझने के लिए 1858–1947 के औपनिवेशिक ढांचे को केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि विवाद की संरचना-निर्माता शक्ति के रूप में देखना आवश्यक है (हैनसेन, 1999; लार्सन, 1995)।

4. स्वतंत्र भारत: 1949 की घटना, राज्य-नीति और लंबे 'स्थगन' का काल (1947–1980)

स्वतंत्र भारत के आरंभिक दशकों में अयोध्या विवाद एक ऐसे प्रश्न के रूप में सामने आया, जिसे नव-निर्मित राष्ट्र-राज्य सांप्रदायिक सौहार्द और राजनीतिक स्थिरता के लिए "नियंत्रित" रखना चाहता था।1949 में परिसर में राम मूर्तियों की स्थापना के बाद प्रशासन ने स्थल को विवादित घोषित कर ताले/नियंत्रण की व्यवस्था की।यह कदम एक ओर तत्काल हिंसा/टकराव रोकने के लिए था, पर दूसरी ओर इसने विवाद को न्यायिक-प्रशासनिक 'स्थगन' में डाल दिया।इस चरण में राज्य-नीति का मूल चरित्र "यथास्थिति" रहा—अर्थात् खुली राजनीतिक पहल से बचना, जबकि अदालतों/प्रशासनिक आदेशों के माध्यम से स्थिति संभालना।

राजनीतिक संदर्भ में यह वही दौर था जब विभाजन के घाव ताज़ा थे और राष्ट्रीय नेतृत्व (विशेषतः कांग्रेस) बहुलतावादी राष्ट्रवाद तथा धर्मनिरपेक्ष राज्य-व्यवस्था को स्थिर करने में जुटा था।ऐसे में अयोध्या जैसे विवादों को "राष्ट्र-निर्माण" की प्राथमिकताओं के सामने द्वितीयक मानकर टालना एक रणनीति भी थी।किंतु दीर्घकाल में यह रणनीति उलटी सिद्ध हुई, क्योंकि विवाद का समाधान न होने से वह धीरे-धीरे संगठनों द्वारा पुनर्सक्रिय किए जाने योग्य 'प्रतीक' बना रहा।

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

इस अवधि में दो प्रवृत्तियाँ महत्वपूर्ण हैं।पहली, न्यायिक प्रक्रियाओं का विस्तार—दीवानी दावों और अधिकार-निर्धारण की कानूनी भाषा ने विवाद को औपचारिकता दी।दूसरी, सामाजिक स्तर पर धार्मिक संगठनों और सांस्कृतिक नेटवर्क का धीरे-धीरे मजबूत होना—जिससे भविष्य में जन-आंदोलन के लिए ढांचा तैयार हुआ।पहचान-राजनीति के अध्ययन बताते हैं कि लंबे समय तक "अनिर्णय" बने रहने पर प्रतीकात्मक मुद्दे संगठनों के लिए संसाधन बन जाते हैं; वे उन्हें जन-भावना, लामबंदी और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के लिए उपयोग में लाते हैं (ज़ावोस, 2000; जाफ़रलोट, 1996)।

इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भारत में धर्मनिरपेक्षता का व्यवहारिक रूप हमेशा "धर्म से दूरी" नहीं रहा, बल्कि अक्सर यह "धर्मों के बीच संतुलन-साधने" की नीति रही है।इस नीति ने कई बार राज्य को मध्यस्थ की भूमिका में ला खड़ा किया—पर अयोध्या में मध्यस्थता के स्थान पर 'नियंत्रण' और 'स्थगन' अधिक प्रभावी रहे।परिणामतः, 1980 के दशक में जब राजनीतिक प्रतिस्पर्धा बदली, तब अयोध्या मुद्दा तेजी से राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में आ सका।इसलिए 1947–1980 का काल "शांत" दिख सकता है, पर यह वास्तव में विवाद के 'संस्थागत जमाव' और 'भविष्य की उथल-पुथल' की तैयारी का चरण था (हैनसेन, 1999; लार्सन, 1995)।

5. 1980–1992: जन-आंदोलन, राजनीतिकरण और 6 दिसंबर 1992 का निर्णायक मोड़

1980 के दशक में राम मंदिर आंदोलन का उभार भारतीय राजनीति में संरचनात्मक परिवर्तन का सूचक था।एक ओर कांग्रेस-प्रणाली की चुनौतियाँ बढ़ीं, दूसरी ओर नई चुनावी शक्तियाँ और संगठनात्मक नेटवर्क अधिक मुखर हुए।इसी पृष्ठभूमि में अयोध्या विवाद को "सांस्कृतिक पुनरुत्थान" और "ऐतिहासिक न्याय" की भाषा में राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत किया गया।विश्व हिंदू परिषद और संबद्ध संगठनों की लामबंदी, मंदिर-निर्माण अभियान, तथा रथयात्रा जैसी रणनीतियों ने मुद्दे को जन-भावना से जोड़ दिया।यह आंदोलन केवल धार्मिक आस्था का प्रदर्शन नहीं था; यह आधुनिक राजनीतिक संचार, प्रतीक-

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

निर्माण और संगठनात्मक अनुशासन का उदाहरण भी था (जाफ़रलोट, 1996; हैनसेन, 1999; ज़ावोस, 2000)।

आंदोलन के इस चरण का सबसे गंभीर परिणाम सामाजिक ध्रुवीकरण और हिंसक टकरावों का बढ़ना रहा।सामाजिक विज्ञान साहित्य में यह तर्क उभरता है कि सामूहिक हिंसा केवल "भीड़ की अचानक उग्रता" नहीं होती, बल्कि उसके पीछे संगठन, अफवाह-तंत्र, प्रशासनिक निष्क्रियता/पक्षधरता और राजनीतिक प्रोत्साहन जैसे घटक काम करते हैं (ब्रास, 2003; वर्शनी, 2002)।अयोध्या आंदोलन ने इसी प्रकार के 'सार्वजनिक भावावेग' को राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के साथ जोड़ दिया।

6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद का ध्वंस आधुनिक भारत के इतिहास में एक निर्णायक घटना है।इसे केवल एक ढांचा गिरने की घटना कहना उसके प्रभावों को कम करके आंकना होगा।इसने राज्य की संस्थागत क्षमता, कानून-व्यवस्था की जिम्मेदारी और संवैधानिक संरक्षण की धारणा को झकझोर दिया।इसके बाद अनेक स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे हुए, जिनके दीर्घकालिक प्रभाव सामाजिक विश्वास, नागरिक सहअस्तित्व और राजनीतिक विमर्श में दिखाई दिए।दंगों और सांप्रदायिक टकरावों पर शोध बताता है कि जब हिंसा राजनीतिक पहचान का उपकरण बन जाती है, तब लोकतंत्र में "अधिकार" और "सुरक्षा" की भाषा संकटग्रस्त होती है (कौसर, 2006; वर्शनी, 2002)।

यह चरण यह भी दिखाता है कि 'इतिहास' कैसे राजनीतिक पूंजी बनता है।अतीत के चयनात्मक पाठ, स्मारक-स्थलों का प्रतीकीकरण, और धार्मिक आस्था के साथ 'राष्ट्र' का तादात्म्य—इन सबने मिलकर आंदोलन को भावनात्मक ऊर्जा दी (थापर, 2019; नंदी, 1995)।अतः 1980–1992 को केवल राजनीतिक उभार नहीं, बल्कि आधुनिक भारत में सार्वजनिक संस्कृति के पुनर्गठन के चरण के रूप में पढ़ना उचित होगा।

6. 1992–2019: न्यायिक प्रक्रिया, आयोग, साक्ष्य-विमर्श और 2019 का फैसला

1992 के बाद अयोध्या विवाद का प्रमुख मंच न्यायपालिका बन गया।इस चरण में राज्य, समाज और संगठन—सभी ने अपनी-अपनी वैधता न्यायिक प्रक्रिया

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

के भीतर निर्मित करनी चाही। आयोग-आधारित जांचें और संसदीय/आधिकारिक चर्चाएँ एक ओर चलती रहीं, वहीं दीवानी मुकदमों की सुनवाई और साक्ष्य-संग्रह का विशाल तंत्र विकसित हुआ।आयोगों/सरकारी अभिलेखों पर "कार्रवाई/एक्शन-टेकन" जैसी दस्तावेजी परतें यह संकेत देती हैं कि राज्य भी इस विवाद को केवल कानून-व्यवस्था नहीं, बल्कि सार्वजनिक वैधता के प्रश्न के रूप में देख रहा था (गृह मंत्रालय, भारत सरकार, 2022)।

न्यायिक प्रक्रिया के भीतर सबसे जटिल प्रश्न "साक्ष्य" का था—आस्था-आधारित दावे, ऐतिहासिक स्रोत, पुरातात्विक निष्कर्ष, गवाहियाँ, और भूमि-स्वामित्व के दस्तावेज—इन सबको एक ही निर्णय में समेटना आसान नहीं था।इसलिए 2010 के उच्च न्यायालय निर्णय ने विवादित भूमि को तीन भागों में बाँटने जैसा समाधान प्रस्तुत किया, जिसे कई विद्वानों ने "समाज-शांति" की कोशिश तो माना, पर विधिक तर्क की दृष्टि से विवादास्पद भी कहा।इसी कारण मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुंचा।

2019 में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वसम्मति से अंतिम निर्णय दिया और विवादित भूमि पर मंदिर-निर्माण के लिए ट्रस्ट गठन तथा मुस्लिम पक्ष को वैकल्पिक भूमि देने का निर्देश दिया (सर्वोच्च न्यायालय, भारत, 2019)।एस.सी. ऑब्ज़र्वर द्वारा प्रकाशित निर्णय-सार और केस-बैकग्राउंड बताता है कि अदालत ने 2010 के "तीन हिस्से" वाले समाधान को उलटते हुए शीर्षक के प्रश्न पर अंतिम निर्णय दिया, और साथ ही यह भी रेखांकित किया कि 1949 की घटना तथा 1992 का ध्वंस कानून-उल्लंघन थे (एस.सी. ऑब्ज़र्वर, 2019)।यह बिंदु महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे अदालत ने 'वैधता' को केवल परिणाम में नहीं, बल्कि प्रक्रिया और कानून-पालन के सिद्धांत में भी जोड़ने की कोशिश की।

इस चरण का राजनीतिक अर्थ भी व्यापक है।न्यायिक समाधान ने संघर्ष को 'सड़क' से 'कानून' की ओर स्थिर करने का दावा किया, पर साथ ही इसने सार्वजनिक बहस को नए प्रश्न दिए—क्या न्यायालय सांस्कृतिक-ऐतिहासिक विवादों का अंतिम निर्णायक हो सकता है? क्या "साक्ष्य" की परिभाषा इतिहास/पुरातत्व के सार्वजनिक उपयोग को प्रभावित करेगी? और क्या निर्णय

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

के बाद सामाजिक मेल-मिलाप की प्रक्रिया स्वतः संभव है? (लार्सन, 1995; थापर, 2019; वर्शनी, 2002)। इस प्रकार 1992–2019 का कालखंड "न्यायिक संस्थागतरण" का चरण रहा, जिसने आधुनिक भारत में अदालतों की भूमिका को एक बार फिर केंद्र में ला दिया।

7. 2019–2024: पुनर्गठन, ट्रस्ट-प्रक्रिया, प्राण-प्रतिष्ठा और नए विमर्श

2019 के निर्णय के बाद राम मंदिर परियोजना एक नए चरण में प्रवेश करती है—जहाँ न्यायिक वैधता के साथ राज्य-समर्थित संस्थागत ढांचा (ट्रस्ट, भूमि-प्रबंधन, निर्माण-निगरानी) और व्यापक सार्वजनिक अनुष्ठानिकता जुड़ती है। यह चरण इसलिए विशिष्ट है क्योंकि विवाद का केंद्र "शीर्षक/अधिकार" से हटकर "राज्य-समाज संबंध" और "राष्ट्रीय प्रतीक-निर्माण" की ओर बढ़ जाता है।निर्णय ने कानूनी विवाद को समाप्त किया, पर सार्वजनिक जीवन में उसके अर्थ—धर्मनिरपेक्षता, बहुलतावाद, नागरिक समानता—पर बहसें और तेज हो गईं (जाफ़रलोट, 2019; थापर, 2019)।

2024 की प्राण-प्रतिष्ठा एक अत्यंत प्रतीकात्मक घटना रही।आधुनिक इतिहास के नजरिए से यह सिर्फ धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि 'राजकीय राष्ट्रवाद' और 'सांस्कृतिक राजनीति' के संगम का दृश्य भी है।इस प्रकार के आयोजनों पर राजनीति-विज्ञान और समाजशास्त्र का साहित्य बताता है कि जब धार्मिक प्रतीक "राष्ट्रीय गौरव" के प्रतीक में बदलते हैं, तब वे नागरिकता की साझा भाषा को भी प्रभावित करते हैं—कुछ समूह इसे समावेशी गौरव मानते हैं, कुछ इसे बहुलतावाद के लिए चुनौती (हैनसेन, 1999; जाफ़रलोट, 2019)। एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि 2019 के बाद भी "सार्वजनिक स्मृति" का संघर्ष समाप्त नहीं होता।अदालत का निर्णय एक कानूनी निष्कर्ष है, पर समाज में इतिहास और आस्था के प्रतिस्पर्धी आख्यान जीवित रहते हैं।नंदी आदि जैसे विद्वानों ने पहले ही संकेत किया था कि साम्प्रदायिकता केवल "घटना" नहीं, बल्कि 'कल्पित समुदायों' और 'राजनीतिक संस्कृति' में जड़ जमाने वाली प्रक्रिया है (नंदी, 1995)।इसी तरह दंगों/सांप्रदायिक हिंसा पर अध्ययन बताते हैं कि समाधान के लिए केवल निर्णय पर्याप्त नहीं; स्थानीय स्तर पर विश्वास-

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

निर्माण, न्याय, और पुनर्वास जैसी प्रक्रियाएँ जरूरी होती हैं (वर्शनी, 2002; ब्रास, 2003)।

2019–2024 का चरण इसीलिए ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है कि यह "विवाद के बाद" का सामाजिक परीक्षण है—क्या निर्णय के बाद सहअस्तित्व का लोकतांत्रिक आधार मजबूत होगा? क्या राजनीति इस प्रतीक को संवाद/मेल के लिए उपयोग करेगी, या प्रतिस्पर्धी ध्रुवीकरण के लिए? और क्या संवैधानिक संस्थाएँ सार्वजनिक भावनाओं के दबाव के बीच अपनी तटस्थता बनाए रख सकेंगी? इन प्रश्नों का उत्तर अभी इतिहास लिख रहा है, पर यह स्पष्ट है कि राम मंदिर की कहानी अब भी आधुनिक भारत की राजनीति और सार्वजनिक संस्कृति को आकार दे रही है।

8. निष्कर्ष

राम मंदिर आंदोलन का दीर्घ इतिहास यह स्थापित करता है कि आधुनिक भारत में धर्म-संबंधी विवाद केवल आस्था का प्रश्न नहीं होते; वे सत्ता, वैधता, स्मृति, और नागरिकता की भाषा को भी पुनर्गठित करते हैं।1858–1947 के औपनिवेशिक काल में प्रशासन ने विवाद को 'शांति-प्रबंधन' के जरिए टालने की नीति अपनाई, जिससे यथास्थिति तो बनी, पर समाधान नहीं निकला।स्वतंत्र भारत ने भी लंबे समय तक इसी विरासत को ढोया—1949 के बाद स्थल का प्रशासनिक नियंत्रण एक तरह का "स्थगन" था, जिसने समय के साथ इसे और अधिक राजनीतिक प्रतीक बनने दिया।1980–1992 के चरण ने दिखाया कि लोकतंत्र में धार्मिक प्रतीक किस प्रकार जन-लामबंदी, संगठनात्मक नेटवर्क और चुनावी प्रतिस्पर्धा के माध्यम बन सकते हैं; साथ ही यह भी कि जब संस्थागत नियंत्रण कमजोर पड़ता है, तो हिंसा और ध्रुवीकरण के सामाजिक-राजनीतिक परिणाम पीढ़ियों तक टिकते हैं ।

1992–2019 की न्यायिक प्रक्रिया ने विवाद को कानून के माध्यम से "समेटने" की कोशिश की।2019 के निर्णय ने शीर्षक विवाद का कानूनी निष्कर्ष दिया और साथ ही यह भी रेखांकित किया कि कुछ प्रमुख घटनाएँ कानून-उल्लंघन थीं। आधुनिक इतिहास की दृष्टि से यह निर्णय एक "संवैधानिक क्षण" है—जहाँ

Publications
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3048-6726 www.uijmr.in uijmreditor@gmail.com Vol-1,Issue-3(Oct-Dec),2024

न्यायपालिका ने सामाजिक शांति, साक्ष्य-विवेचना और वैधानिकता के बीच संतुलन साधने का प्रयास किया।परंतु इतिहास यह भी बताता है कि कानूनी निर्णय सामाजिक मेल-मिलाप की गारंटी नहीं होता; इसके लिए दीर्घकालिक विश्वास-निर्माण, समावेशी सार्वजनिक भाषा, और संस्थागत निष्पक्षता जरूरी है। 2019–2024 के चरण ने विवाद के बाद की राजनीति को एक नया रूप दिया—जहाँ मंदिर निर्माण और प्राण-प्रतिष्ठा ने 'राष्ट्रीय प्रतीक' की राजनीति को अधिक दृश्य बनाया।इससे यह प्रश्न और महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि भारत का बहुलतावादी लोकतंत्र धार्मिक प्रतीकों के सार्वजनिक उपयोग के साथ किस प्रकार संतुलन बनाएगा।भविष्य के शोध के लिए कुछ क्षेत्र स्पष्ट हैं: (1) स्थानीय स्तर पर सामाजिक संबंधों और स्मृति-राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन, (2) न्यायिक फैसलों के बाद "कानूनी वैधता बनाम सामाजिक वैधता" का संबंध, (3) मीडिया/डिजिटल प्लेटफॉर्म द्वारा प्रतीक-निर्माण की नई प्रक्रियाएँ, और (4) धार्मिक स्थलों के विवादों में राज्य-नीति के मॉडल।निष्कर्षतः, राम मंदिर आंदोलन आधुनिक भारतीय इतिहास में एक केंद्रीय अध्ययन-क्षेत्र बना रहेगा, क्योंकि यह भारत के लोकतंत्र की अंतर्निहित जटिलताओं और उसके सतत रूपांतरण को उजागर करता है।

संदर्भ सूची

1. ब्रास, पॉल आर. (2003). आधुनिक भारत में हिंदू-मुस्लिम हिंसा का निर्माण. सिएटल: यूनिवर्सिटी ऑफ वॉशिंगटन प्रेस।
2. एज, पी. डब्ल्यू., एवं राजन, एम. सी. (2018). अयोध्या में बाबरी मस्जिद/राम मंदिर विवाद: पवित्र स्थल और राज्य की विफलताएँ. ऑक्सफोर्ड ब्रूक्स विश्वविद्यालय (कार्यपत्र/रिपोर्ट)।
3. फ्राइटैग, सैंड्रिया बी. (1989). सामूहिक कार्रवाई और समुदाय: उत्तर भारत में सांप्रदायिकता का उदय. कैलिफ़ोर्निया: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफ़ोर्निया प्रेस।
4. हैनसेन, थॉमस ब्लॉम (1999). केसरिया लहर: आधुनिक भारत में लोकतंत्र और हिंदू राष्ट्रवाद. प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

5. जाफ़रलोट, क्रिस्टोफ़ (1996). हिंदू राष्ट्रवादी आंदोलन और भारतीय राजनीति (1925–1990). नई दिल्ली: पेंगुइन।
6. जाफ़रलोट, क्रिस्टोफ़ (2019). मोदी का भारत: हिंदू राष्ट्रवाद और जातीय लोकतंत्र का उदय. प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. कौसर, ज़रीन (2006). भारत में सांप्रदायिक दंगे: हिंदू-मुस्लिम संघर्ष और पहचान का प्रश्न. जर्नल ऑफ मुस्लिम माइनॉरिटी अफेयर्स, 26(3), 373–390।
8. लार्सन, जेराल्ड जेम्स (संपा.). (1995). धर्मनिरपेक्ष भारत में धर्म और व्यक्तिगत क़ानून. इंडियाना: इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. गृह मंत्रालय, भारत सरकार (2022). लिब्रहान अयोध्या आयोग की रिपोर्ट पर की गई कार्रवाई. नई दिल्ली: भारत सरकार।
10. नंदी, अशिस; त्रिवेदी, शालिनी; मायराम, शशि; एवं याज्ञिक, आच्युत (1995). राष्ट्रीय कामुकता का निर्माण: राष्ट्र-निर्माण में इच्छा की राजनीति. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. सर्वोच्च न्यायालय, भारत (2019). एम. सिद्दीक़ (मृत) बनाम महंत सुरेश दास एवं अन्य: अयोध्या शीर्षक विवाद निर्णय (9 नवंबर 2019). नई दिल्ली।
12. एस.सी. ऑब्ज़र्वर (2019). अयोध्या शीर्षक विवाद: मामले की पृष्ठभूमि और निर्णय का सार. नई दिल्ली।
13. थापर, रोमिला (2019). अतीत एक वर्तमान के रूप में: इतिहास द्वारा समकालीन पहचानों का निर्माण. नई दिल्ली: एलेफ़।
14. वर्शनी, अशुतोष (2002). जातीय संघर्ष और नागरिक जीवन: भारत में हिंदू और मुस्लिम. न्यू हेवन: येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. ज़ावोस, जॉन (2000). भारत में हिंदू राष्ट्रवाद का उदय. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।